UP Board Solutions Class 12 Chapter 4 विचारक, विश्वास और ईमारतें (History)

अभ्यास-प्रश्न

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

प्रश्न 1.
क्या उपनिषदों के दार्शनिकों के विचार नियतिवादियों और भौतिकवादियों से भिन्न थे? अपने जवाब के पक्ष में तर्क दीजिए।
उत्तर:
हाँ, उपनिषदों के दार्शनिकों के विचार नियतिवादियों और भौतिकवादियों के विचार से पूर्णतया भिन्न थे। इनकी भिन्नता के निम्नलिखित आधार थेनियतिवादियों तथा भौतिकवादियों के विचार-नियतिवादियों के अनुसार इंसान के सुख-दुख नियति द्वारा निर्धारित मात्रा में दिए गए हैं। इन्हें चाहकर भी बदला नहीं जा सकता। बुद्धिजीवी लोग सोचते हैं कि वे अपने सद्गुणों द्वारा इन्हें बदल देंगे किंतु यह असंभव है। अतः इंसान को अपने हिस्से के सुख-दुख को भोगना ही पड़ता है। इसी प्रकार भौतिकवादी मानते हैं कि संसार में दान-पुण्य नामक चीजों का कोई महत्त्व नहीं है। दान-पुण्य करने की अवधारणा पूरी तरह से निराधार है। मरणोपरांत कुछ भी शेष नहीं रहता। पापात्मा और पुण्यात्मा दोनों नष्ट होकर पंचतत्व में विलीन हो जाते हैं। उपनिषदों के दार्शनिक विचार-ऊपर लिखित विचारों में आत्मा-परमात्मा को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है जबकि उपनिषदों के अनुसार मानव-जीवन का परम उद्देश्य आत्मा को परमात्मा में विलीन कर स्वयं परम ब्रह्म हो जाना है।

प्रश्न 2.
जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं को संक्षेप में लिखिए।
उत्तर:
जैन धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ इस प्रकार हैं-जैन धर्म के अनुसार मानव जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति है। इसे प्राप्त करने
के लिए त्रिरत्न का पालन करना नितांत आवश्यक है। ये तीन रत्न हैं-

1. सम्यक् ज्ञान अर्थात् अज्ञान को दूर करके ज्ञान प्राप्ति की दिशा में प्रयत्न करना। ज्ञान की प्राप्ति तीर्थंकरों के उपदेशों का अनुसरण करने से ही हो सकती है।
2. सम्यक् दर्शन (ध्यान) अर्थात् तीर्थंकरों में विश्वास रखना तथा सत्य के प्रति श्रद्धा रखना।
3. सम्यक् चरित्र (आचरण) अर्थात् अच्छे आचरण अथवा कार्य करना। जैन धर्म के अनुसार संपूर्ण विश्व प्राणवान है।

सृष्टि के कण-कण में चाहे वह जड़ है या चेतन आत्मा का निवास है अर्थात् आत्मा केवल मनुष्यों पशु-पक्षियों आदि में ही नहीं अपितु पेड़-पौधों, पत्थरों, जल, वायु आदि सभी में है। अतः जड़, चेतन किसी की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। जैन मान्यता के अनुसार मनुष्य के कर्म ही उसके जन्म और पुनर्जन्म के चक्र को निर्धारित करते हैं। मनुष्य जो कर्म करता है, उसका फल एकत्रित होता रहता है और उस कर्मफल को भोगने के लिए ही आत्मा को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। कर्मों का नाश करके ही मनुष्य पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पा सकता

है। कर्मों का विनाश त्याग और तपस्या के द्वारा ही किया जा सकता है। संसार त्याग के बिना कर्मों से छुटकारा नहीं पाया जा सकता।
इसीलिए जैन परंपरा में मुक्ति प्राप्ति के लिए विहारों में निवास करना अनिवार्य बताया गया है। जैन धर्म पाँच व्रतों अर्थात् अहिंसा, चोरी न करना, झूठ न बोलना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और धन इकट्ठा न करना के पालन पर अत्यधिक बल देता है। जैन साधुओं और साध्वियों के लिए इन व्रतों का पालन करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न 3.
साँची के स्तूप के संरक्षण में भोपाल की बेगमों की भूमिका की चर्चा कीजिए।
उत्तर:
19 वीं सदी में भोपाल के शासकों और यूरोपियों ने साँची के स्तूप को बचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यूरोपीय शुरू
से ही साँची के स्तूप में दिलचस्पी दिखाते रहे। फ्रांसीसियों ने तो साँची के पूर्वी तोरणद्वार को फ्रांस के संग्रहालय में ले जाने की अनुमति भी माँगी। अंग्रेजों की भी यही इच्छा थी, परंतु शाहजहाँ बेगम ने दोनों को साँची की प्लॉस्टर ऑफ पेरिस की बनी प्रतिकृतियाँ देकर संतुष्ट कर दिया। इस तरह साँची की मूल कृति को भोपाल राज्य में अपने स्थान पर बनाए रखा। शाहजहाँ बेगम और उनकी उत्तराधिकारिणी सुल्तान जहाँ बेगम ने इस प्राचीन स्थान के रख-रखाव के लिए बहुत-सा धन दिया। उन्होंने वहाँ एक संग्रहालय और अतिथिशाला का निर्माण करवाया। जहाँ जॉन मार्शल ने कई पुस्तकें लिखीं जिनके प्रकाशन के लिए भी बेगमों ने दान दिया। यह भी भाग्य की बात है कि यह रेल ठेकेदारों और निर्माताओं की नजर से बचा रहा जो ऐसी चीजों को यूरोप संग्रहालय में ले जाना चाहते थे। आज इसकी मरम्मत और संरक्षण का कार्य भारतीय पुरातत्त्व विभाग कर रहा है।

प्रश्न 4.
निम्नलिखित संक्षिप्त अभिलेख को पढ़िए और जवाब दीजिए :
महाराजा हुविष्क (एक कुषाण शासक) के तैंतीसवें साल में गर्म मौसम के पहले महीने के आठवें दिन त्रिपिटक जानने वाले भिक्खु बल की शिष्या त्रिपिटक जानने वाली बुद्धमिता की बहन की बेटी भिक्खुनी धनवती ने अपने माता-पिता के साथ मधुवनक में बोधिसत्त की मूर्ति स्थापित की।

1. धनवती ने अपने अभिलेख की तारीख कैसे निश्चित की?
2. आपके अनुसार उन्होंने बोधिसत्त की मूर्ति क्यों स्थापित की?
3. वे अपने किन रिश्तेदारों का नाम लेती हैं?
4. वे कौन से बौद्ध ग्रंथों को जानती थीं?
5. उन्होंने ये पाठ किससे सीखे थे?

उत्तर:

1. धनवती ने तत्कालिन कुषाण शासक हुविष्क के शासनकाल के तैतीसवें वर्ष में गर्म मौसम के पहले महीने के आठवें दिन का उल्लेख करके अपने अभिलेख की तारीख निश्चित की।
2. धनवती ने बौद्ध धर्म में अपना विश्वास प्रकट करने हेतु और स्वयं को भिक्खुनी सिद्ध करने हेतु मधुवनक में बोधिसत्त की मूर्ति की स्थापना की।
3. इस अभिलेख में उसने अपनी मौसी (माँ की बहन) बुद्धमिता के नाम का उल्लेख किया है। वह भी एक बौद्ध भिक्षुणी थी। उसने भिक्षुणी बाला और अभिभावकों के भी नामों का उल्लेख किया है।
4. धनवती बौद्ध धर्म के ग्रंथ त्रिपिटक को जानती थी।

https://www.evidyarthi.in/

5. उसने यह धार्मिक ग्रंथ भिक्षुणी बुद्धिमता (अपनी मौसी) से सीखा था। धनवती भिक्षुणी बाला की पहली महिला शिष्य थी।

प्रश्न 5.
आपके अनुसार स्त्री-पुरुष संघ में क्यों जाते थे?
उत्तर:
हमारे अनुसार स्त्री-पुरुष संघ में इसलिए जाते थे, क्योंकि वहाँ वे धर्म का नियमित ढंग से अध्ययन, विचार-विमर्श, मनन, उपासना आदि कर सकते थे। वे यहाँ विचार-विमर्श के साथ-साथ प्रचारकों और अध्यापकों के माध्यम से भी धर्म को जान सकते थे व उसे व्यवहार में ला सकते थे। बौद्ध संघ में कुछ नियम और उपनियम रचे गए थे। सभी बौद्ध भिक्षुकों को संघ में रहकर उन नियमों का पालन करना होता था। सभी भिक्षुकों को संघ के अनुशासन में रहना, उचित ढंग से अपने विचारों को दर्शाना होता था। भिक्षुकों को नियमानुसार भिक्षा माँगकर ही अपना भोजन और अन्य सामग्री जुटानी होती थी। संघ में उन्हें अध्ययन, अध्यापन भी करवाया जाता था। मोक्ष प्राप्ति या निर्वाण के लिए उनसे बताए गए मार्ग, सिद्धांतों और शिक्षाओं का अनुसरण करवाया जाता था।

निम्नलिखित पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

प्रश्न 6.
साँची की मूर्तिकला को समझने में बौद्ध साहित्य के ज्ञान से कहाँ तक सहायता मिलती है?
उत्तर:
सामान्यतः साँची की मूर्तियों को देखकर अथवा उत्कीर्ण चित्रों को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि इनका चित्रण किन संदर्भों में किया गया है अथवा उनका क्या अभिप्राय है, किंतु बौद्ध साहित्य साँची की मूर्तिकला को समझने में हमारी महत्त्वपूर्ण सहायता करता है। बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन से साँची की मूर्तियों में उल्लेखित सामाजिक एवं मानव जीवन की अनेक बातों को समझने में दर्शक को महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, साँची के उत्तरी तोरणद्वार के एक भाग पर एके चित्र है। इस चित्र में घास-फूस से बनी झोंपड़ियाँ, पेड़, स्त्री-पुरुष और बच्चे दिखाई देते हैं, जिससे लगता है। कि इसमें ग्रामीण दृश्य का चित्रण किया गया है।

किंतु साँची की मूर्तिकला का गहनतापूर्वक अध्ययन करनेवाले कला इतिहासकारों के अनुसार मूर्तिकला के इस अंश में वेसान्तर जातक की एक कथा के दृश्य को दिखाया गया है। वेसान्तर जातक में एक ऐसे दानी राजकुमार का उल्लेख है जिसने अपना सब कुछ एक ब्राह्मण को दान में दे दिया और स्वयं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ जंगल में रहने के लिए चला गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इतिहासकार मूर्तियों का अध्ययन संबद्ध ग्रंथों की सहायता से करते हैं और लिखित साक्ष्यों के साथ तुलना करके ही मूर्तियों की व्याख्या करते हैं। बौद्धचरित लेखन ने भी बौद्ध मूर्तिकला को समझने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

विद्वान इतिहासकारों ने बौद्धचरित लेखन को भली-भाँति समझकर बौद्ध मूर्तिकला की व्याख्या करने का सफल प्रयास किया है। बौद्धचरित लेखन में हमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि बुद्ध ने एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए बोधि अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति की थी। अतः अनेक प्रारम्भिक मूर्तिकारों द्वारा बुद्ध की उपस्थिति को प्रतीकों के माध्यम से दिखाने का प्रयत्न किया गया। उन्होंने बुद्ध का चित्रांकन मानव रूप में नहीं किया। उदाहरण के लिए, बौद्ध मूर्तिकला में रिक्त स्थान बुद्ध के ध्यान की दशा का प्रतीक बन गया। इसी प्रकार स्तूप को महापरिनिर्वाण (महापरिनिबान) का प्रतीक मान लिया गया। चक्र महात्मा बुद्ध द्वारा

सारनाथ में दिए गए पहले उपदेश का प्रतीक बन गया। हमें याद रखना चाहिए कि बुद्ध ने वाराणसी के पास सारनाथ के मृगदीव (हिरणकुंज) में आषाढ़ पूर्णिमा को अपना पहला उपदेश दिया था, जो 'धर्म चक्रप्रवर्तन' (धर्म के पहिए को घुमाना) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

साँची में पशुओं के अत्यधिक सुंदर एवं सजीव चित्रों को अंकन किया गया है। मुख्य रूप से हाथी, घोड़े, बंदर एवं गाय-बैल के चित्र अंकित किए गए हैं। जातक ग्रंथों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि साँची में दिखाए गए अनेक दृश्य जातकों में वर्णित पशु कथाओं से संबंधित हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार इन पशुओं का अंकन संभवत: सजीव दृश्यों के द्वारा दर्शकों को आकर्षित करने के लिए किया गया था। हमें याद रखना चाहिए कि प्रायः पशुओं का मानव गुणों के प्रतीकों के रूप में भी प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए हाथी को शक्ति एवं ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। इन प्रतीकों में कमल तथा हाथियों के मध्य दिखाई गई एक महिला की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हाथियों को अभिषेक करने की मुद्रा में उस महिला पर जल छिड़कते हुए दिखाया गया है।

कुछ विद्वान इस मूर्ति को बुद्ध की माता माया बताते हैं, तो कुछ सौभाग्य की देवी गजलक्ष्मी। उल्लेखनीय है कि लोकप्रिय गजलक्ष्मी को प्रायः हाथियों के साथ दिखाया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि संभवतः उपासक इसका संबंध माया और गजलक्ष्मी दोनों के साथ मानते हैं। लोक परंपराओं से संबंधित साहित्य से भी साँची की मूर्तिकला को समझने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। उल्लेखनीय है। कि साँची में उत्कीर्ण अनेक मूर्तियों का संबंध प्रत्यक्ष रूप से बौद्ध धर्म से नहीं था। इन मूर्तियों का अंकन लोक परंपराओं से प्रभावित होते हुए किया गया था। उदाहरण के लिए, साँची स्तूप के तोरणद्वार पर सुन्दर स्त्रियों की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की गई हैं। उन्हें तोरणद्वार के किनारे एक पेड़ की टहनियाँ पकड़कर झूलते हुए दिखाया गया है।

प्रारंभ में विद्वान यह सोचकर हैरान थे कि तोरणद्वार पर इस मूर्ति का अंकन क्यों किया गया, क्योंकि इस मूर्ति का त्याग और तपस्या से कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध दृष्टिगोचर नहीं होता था। किंतु अन्य साहित्यिक परंपराओं का अध्ययन करने के बाद विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह मूर्ति शालभंजिका की है, जिसका संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख मिलता है। लोक परंपरा के अनुसार शालभंजिका के स्पर्श से वृक्ष फूलों से भर जाते थे और उनमें फल लगने लगते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में प्रवेश करने वाले लोगों ने अपनी परंपराओं एवं धारणाओं का परित्याग नहीं किया अपितु इनसे बौद्ध धर्म को समृद्ध बनाया। विद्वान इतिहासकारों का विचार है कि साँची की मूर्तियों में पाए जाने वाले अनेक प्रतीकों अथवा चिह्नों को भी लोक परंपराओं से लिया गया था। उल्लेखनीय है कि जिस कला में प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है उसके अर्थ की व्याख्या अक्षरशः नहीं की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए बौद्ध मूर्तिकला में पेड़ का अभिप्राय केवल एक पेड़ से नहीं है अपितु उसका चित्रांकन महात्मा बुद्ध के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना के प्रतीक के रूप में किया जाता है। इतिहासकार कलाकृतियों के निर्माताओं की परंपराओं को समझकर ही प्रतीकों को समझने में समर्थ हो सकते हैं।

प्रश्न 7.
चित्र 4.1 और 4.2 में साँची से लिए गए दो परिदृश्य दिए गए हैं। आपको इनमें क्या नज़र आता है? वास्तुकला, पेड़-पौधे और जानवरों को ध्यान से देखकर तथा लोगों के काम-धंधों को पहचानकर यह बताइए कि इनमें से कौन से ग्रामीण और कौन से शहरी परिदृश्य हैं?
उत्तर:
साँची का स्तूप ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ की मूर्तिकला या चित्रकला को समझने में बौद्ध साहित्य और लोक परंपराओं से महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है।
चित्र-4.1-

https://www.evidyarthi.in/

इसको ध्यानपूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें ग्रामीण दृश्य को अंकित किया गया है। इसमें लताओं, पेड़-पौधों और पशुओं को दर्शाया गया है। विशेष रूप से गाय, भैंस और हिरण को चित्रित किया गया है। इस चित्र के शीर्ष भाग में बने पशुओं के चित्रों और उनके साथ बने बौद्ध भिक्षुओं के चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे अपनी सुरक्षा को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हैं। जबकि निचले भाग में पशुओं के कटे हुए सिर और धनुष-वाण लिए कुछ लोगों को दिखाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म से पूर्व ब्राह्मण धर्म में अनेक जटिलताओं का समावेश हो गया था। यहाँ तक कि बलि प्रथा को भी महत्त्व दिया जाने लगा था।

चित्र-4.2-

चित्र 4.1

इसमें कुछ मजबूत लंबे-लंबे स्तंभ और उनके नीचे जाली का सुंदर कार्य दिखाया गया है। इन स्तंभों के ऊपर विभिन्न मवेशी और कुछ अन्य वस्तुओं को चित्रित किया गया है। स्तंभों के माध्यम से बौद्ध धर्म के अनुयायियों को विभिन्न शारीरिक आकृतियाँ में बैठे हुए, खड़े हुए, एक-दूसरे को निहारते हुए तथा विभिन्न प्रकार के हाव-भाव की अभिव्यक्ति करते हुए दिखाया गया है। स्तंभ के ऊपरी सिरों पर उल्टे रखे हुए कलश, जिन पर डिजाइन बने हैं, दर्शाया गया है। इस चित्र के निचले भाग में कुछ स्तंभ, भिक्षुणियों के विभिन्न आकार, हाव-भाव और किसी इमारत के डिज़ाइन जो संभवतः किसी स्तंभ के बाहरी हिस्से से संबंधित हैं, दिखाया गया है। हमारे विचारानुसार चित्र नं. 4.1 ग्रामीण क्षेत्रों से और चित्र नं. 4.2 राजा, शहरी परिदृश्य और महलों से संबंधित है।

प्रश्न 8.

वैष्णववाद और शैववाद के उदय से जुड़ी वास्तुकला और मूर्तिकला के विकास की चर्चा कीजिए।

उत्तर:

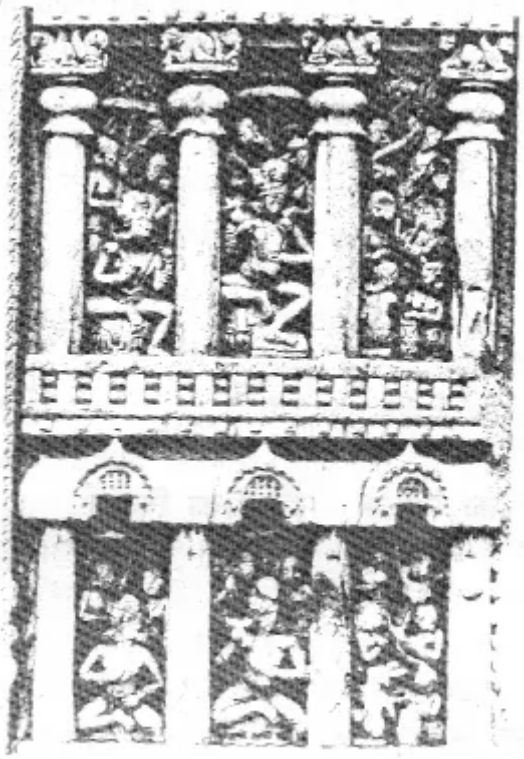

चित्र 4.2

600 ई0पू0 से 600 ई0 तक के काल में वैष्णववाद और शैववाद का भी पर्याप्त विस्तार हुआ। वैष्णववाद और शैववाद इन दोनों परंपराओं में एक देवता विशेष की पूजा पर विशेष बल दिया जाता था। वैष्णव परंपरा में विष्णु को और शैव परंपरा में शिव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता माना जाता है। दोनों परंपराएँ पौराणिक हिंदू धर्म से संबंधित थीं और दोनों के अंतर्गत मूर्तिकला का विशेष विकास हुआ।

मूर्तिकला का विकास :

अवतारवाद की भावना-वैष्णव धर्म की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। इसमें विष्णु के अवतारों की पूजा पर बल दिया गया। विष्णु के अनेक अवतारों की मूर्तियाँ बनाई गईं। अन्य देवी-

देवताओं की भी मूर्तियाँ बनाई गईं। शिव का चित्रांकन प्रायः उनके प्रतीक लिंग के रूप में किया जाता था। प्रायः मनुष्य के रूप में उनकी मूर्तियाँ भी बनाई जाती थीं। सभी चित्रणों का आधार देवी-देवताओं से जुड़ी मिश्रित अवधारणाएँ थीं। देवी-देवताओं को विशेषताओं एवं उनके प्रतीकों का चित्रांकन उनके शिरोवस्त्र, आभूषणों, आयुधों और बैठने की मुद्रा के द्वारा किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में विष्णु के भिन्न-भिन्न रूप लोकप्रिय थे, जिससे मूर्तिकला के विकास को विशेष प्रोत्साहन मिला। निस्संदेह, सभी स्थानीय देवताओं को विष्णु का रूप मान लेना एकीकृत धार्मिक परंपरा के निर्माण की दिशा में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

विद्वान इतिहासकार इन मूर्तियों से जुड़ी कथाओं का भली-भाँति अध्ययन करके ही उनके अंकन का वास्तविक अर्थ समझने में सफल हुए हैं। इनमें से अनेक कथाओं का उल्लेख प्रथम सहस्राब्दी के मध्यकाल में ब्राह्मणों द्वारा रचित पुराणों में मिलता है। इनकी रचना सामान्यतः संस्कृत श्लोकों में की गई थी। परंपरा के अनुसार इन्हें ऊँची आवाज़ में पढ़ा जाता था ताकि सभी तक उनकी आवाज पहुँच सके। पुराणों की अधिकांश कथाओं का विकास लोगों के पारस्परिक मेलजोल के परिणामस्वरूप हुआ। व्यापारियों, पुजारियों एवं सामान्य स्त्री-पुरुषों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन के परिणामस्वरूप उनके विश्वासों एवं अवधारणाओं का परस्पर आदान-प्रदान होता रहता था। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि वासुदेव-कृष्ण मथुरा क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्थानीय देवता थे, किंतु धीरे-धीरे उनकी पूजा का विस्तार लगभग संपूर्ण देश में हो गया था।

वास्तुकला का विकास :
मंदिरों का निर्माण । उल्लेखनीय है कि विचाराधीन काल में देवी-देवताओं के निवास के लिए अनेक मंदिरों का भी निर्माण किया गया। प्रारंभिक मंदिरों में एक चौकोर कमरा होता था, जिसे गर्भगृह के नाम से जाना जाता था। इसमें एक दरवाज़ा होता था। उपासक इस दरवाजे से मूर्ति की पूजा करने के लिए अंदर प्रवेश कर सकता था। धीरे-धीरे गर्भगृह के ऊपर एक ऊँची संरचना बनाई जाने लगी जिसे शिखर कहा जाता था। मंदिर की दीवारों पर सुंदर भित्तिचित्रों को उत्कीर्ण किया जाता था। कालांतर में मंदिर स्थापत्य में महत्त्वपूर्ण विकास हुआ।

मंदिरों में विशाल सभास्थलों, ऊँची दीवारों तथा सुंदर तोरणद्वारों का भी निर्माण किया जाने लगा। कुछ मंदिरों में जल-आपूर्ति का भी प्रबंध किया जाता था। इस काल की स्थापत्यकला अधिकांश रूपों में धर्म अनुप्राणित थी। इस काल में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ, जिनमें देवगढ़ का देशावतार मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर, नचना का पार्वती मंदिर, तिगवा का विष्णु मंदिर तथा भीतर गाँव का मंदिर अपनी उत्कृष्ट कला के लिए उल्लेखनीय है। प्रारंभिक मंदिरों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इनमें से कुछ मंदिरों का निर्माण पहाड़ियों को काटकर और खोखला करके कृत्रिम गुफाओं के रूप में किया गया था।

कृत्रिम गुफाएँ बनाने की परंपरा बहुत पहले से प्रचलन में थी। सर्वाधिक प्राचीन कृत्रिम गुफाओं का निर्माण ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में किया गया था। इन गुफाओं का निर्माण मौर्य सम्राट अशोक के आदेश से आजीविक संप्रदाय के संतों के लिए किया गया था। दक्षिण भारत में कुछ उत्कृष्ट कोटि की शैलकृत गुफाओं का निर्माण हुआ। अजंता की गुफाएँ स्थापत्यकला का एक उल्लेखनीय नमूना हैं। उनके स्तंभ अत्यधिक सुंदर एवं भिन्न-भिन्न डिजाइनों वाले हैं तथा इनकी आंतरिक दीवारों एवं छतों को सुंदर चित्रों से सुसज्जित किया गया है। मध्य प्रदेश में बाघ में स्तूप-गुफाएँ और विहार-गुफाएँ पर्वतों को काटकर बनाई गई हैं। एलोरां की गुफाएँ शैलकृत गुफाओं का उल्लेखनीय उदाहरण है।

https://www.evidyarthi.in/

इस काल में पहाड़ी के एक तरफ के पूरे खंड की कटाई करके भव्य एकाश्मीय मंदिरों का निर्माण किया गया। इन मंदिरों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, एक बड़ा कक्ष तथा सुंदर नक्काशीदार स्तंभ। सातवीं शताब्दी में पल्लव राजा महेंद्रवर्मन तथा नरसिंहवर्मन ने मामल्लपुरम् में अनेक स्तंभों वाले विशाल कक्षों तथा सात एकाश्मीय मंदिरों का निर्माण करवाया। इन्हें सामान्यतया रथ मंदिर के नाम से जाना जाता है। इस परंपरा का सर्वाधिक विकसित रूप 8वीं शताब्दी के एलोरा के कैलाशनाथ के मन्दिर में देखने को मिलता है। इसमें पूरी पहाड़ी को काटकर उसे मन्दिर का रूप दिया गया है। इस प्रकार यह कहना उचित ही होगा कि वैष्णववाद और शैववाद के उदय ने मूर्तिकला और वास्तुकला के विकास को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया।

प्रश्न 9.
स्तूप क्यों और कैसे बनाए जाते थे? चर्चा कीजिए। उस्तूप क्यों बनाए जाते थे?
उत्तर:
स्तूप संस्कृत का एक शब्द है, जिसका अर्थ है-'ढेर'। सामान्यतः स्तूप महात्मा बुद्ध अथवा किसी अन्य पवित्र भिक्षु के अवशेषों, जैसे-दाँत, भस्म आदि अथवा किसी पवित्र ग्रंथ पर बनाए जाते थे। अवशेष स्तूप के केंद्र में बनाए गए एक छोटे-से कक्ष में एक पेटिका में रख दिए जाते थे। स्तूप बनाने की परम्परा संभवतः बुद्ध से पहले ही प्रचलित रही होगी, किन्तु स्तूपों को बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रतीक के रूप में विशेष प्रसिद्धि मिली। 'अशोकावदान' नामक बौद्धग्रन्थ से उल्लेख मिलता है कि मौर्य सम्राट अशोक ने महात्मा बुद्ध के अवशेषों के भाग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शहर में बाँटकर उन पर स्तूप बनाने का आदेश दिया था। दूसरी शताब्दी ई0पू0 तक भरहुत, साँची और सारनाथ जैसे स्थानों पर महत्त्वपूर्ण स्तूप बनवाए जा चुके थे। स्तूप कैसे बनाए जाते थे? स्तूप प्राय: दान के धन से बनाए जाते थे।

स्तूप बनाने के लिए दान राजाओं (जैसे सातवाहन वंश के राजा), धनी व्यक्तियों, शिल्पकारों एवं व्यापारियों की श्रेणियों और यहाँ तक कि भिक्षुओं और भिक्षुणियों के द्वारा भी दिए जाते थे। स्तूपों की वेदिकाओं तथा स्तंभों पर मिले अभिलेखों से इनके निर्माण और सजावट के लिए दिए जाने वाले दान का उल्लेख मिलता है। अभिलेखों में दानदाताओं के नामों और कभी-कभी उनके ग्रामों अथवा शहरों के नामों, व्यवसायों और संबंधियों के नामों का भी उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, साँची स्तूप के एक प्रवेशद्वार का निर्माण विदिशा के हाथीदाँत का काम करने वाले शिल्पकारों के संघ द्वारा करवाया गया था। स्तूप की निर्माण योजनानीचे एक गोलाकार आधार पर एक अर्द्धगोलाकार गुंबद बनाया जाता था, जिसे अंड कहा जाता था। अंड के ऊपर एक और संरचना होती थी जिसे हर्मिका कहा जाता था। हर्मिका, छज्जे जैसी संरचना होती थी, जिसका निर्माण ईश्वर के आसन के रूप में किया जाता था।

हर्मिका के ऊपर एक सीधा खंभा होता था, जिसे यष्टि कहा जाता था। इसके ऊपर छतरी लगी होती थी जिसे छतरावलि कहा जाता था। पवित्र स्थल को सांसारिक स्थान से पृथक् करने के लिए इसके चारों ओर एक वेदिका बना दी जाती थी। साँची और भरहुत के स्तूपों में किसी प्रकार की साज-सज्जा नहीं मिलती। उनमें केवल पत्थर की वेदिकाएँ और तोरणद्वार हैं। पत्थर की वेदिकाएँ लकड़ी अथवा बाँस के घेरे के समान थीं। चारों दिशाओं में बनाए गए तोरणद्वारों पर सुन्दर नक्काशी की गई थी। भक्तजन पूर्वी तोरणद्वार से प्रवेश करके सूर्य के पथ का अनुसरण करते हुए परिक्रमा करते थे। कालांतर में स्तूप के टीले को भी ताखों एवं मूर्तियों से अलंकृत किया जाने लगा। अमरावती और पेशावर के (आधुनिक पाकिस्तान में शाहजी-की-ढेरी) स्तूप इसके सुंदर उदाहरण हैं।

मानचित्र कार्य

प्रश्न 10.
विश्व के रेखांकित मानचित्र पर उन इलाकों पर निशान लगाइए जहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। उपमहाद्वीप से इन इलाकों को जोड़ने वाले जल और स्थल मार्गों को दिखाएँ।
उत्तर:
संकेत-

1. भारत
2. अफगानिस्तान
3. जापान
4. पाकिस्तान
5. यूनान
6. कोरिया
7. श्रीलंका
8. चीन।

विश्व का रेखांकित मानचित्र लेकर विद्यार्थी स्वयं करें।

eVidyarthi

https://www.evidyarthi.in/